अध्याय – 5

5.1 शुष्क कृषि – परिभाषा, महत्व एवं सिद्धांत

(Dry farming- Definition, Importance and Principles)

भारतीय कृषि को मानसून का जुआ (Gamble with Monsoon) कहा जाता है। देश में खाद्यान्न उत्पादन एवं कृषि विकास वर्षा की मात्रा एवं वितरण पर निर्भर करती है। हमारे देश में कुल शुद्ध कृषि क्षेत्र का लगभग 58 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा पर आधारित है। कुल खाद्यान्न उत्पादन का 40 प्रतिशत इन्ही क्षेत्रों से आता है तथा साथ ही दो तिहाई पशुधन इन क्षेत्रों पर निर्भर है। हैदराबाद स्थित केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान के अनुसंधान परिणाम बताते है कि वर्षा जल तथा अन्य संसाधनों की उपलब्धता की दृष्टि से इन क्षेत्रों में व्यापक क्षेत्रीय असमानता पाई जाती है। उन्नत कृषि तकनीकें अपनाकर बारानी फसलों की

सारणी 5.1.1 : राजस्थान के कृषि जलवायु खंड

क्र. सं.	कृषि जलवायु खंड	वार्षिक वर्षा मिमी.	राजस्थान के जिले	बोई जाने वाली मुख्य फसलें
1	I A शुष्क पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	100–300	प. बाड़मेर, प. जोधपुर, चूरू का शुष्क क्षेत्र	खरीफ दालें, ग्वार, चना, गेहूँ, तिल, सरसों, बाजरा
2	I B सिंचित उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	100–300	श्रीगंगानगर एवं हनुमानगढ़	जीरा, गेहूँ, गन्ना, ईसबगोल ग्वार, सरसों, बाजरा खरीफ दालें व धान
3	I C अति–शुष्क सिचिंत क्षेत्र	100–300	बीकानेर, जैसलमेर चूरू की चार तहसीले	कपास, बाजरा, ज्वार, खरीफ दालें, गेहूँ, सरसों, तिल
4	II A अंतर्वती मैदानी क्षेत्र	300–500	नागौर, झुंझुनू, सीकर, पूर्वी चूरू	बाजरा, तिल, सरसों, गेहूँ, ज्वार, खरीफ दालें
5	II B लूनी नदी का अंतर्वती मैदानी क्षेत्र	300–500	प. सिरोही, पू. जोधपुर, पाली, जालौर	गेहूँ, बाजरा, चना, सरसों, तोरिया, मक्का, गन्ना, मूंगफली, कपास
6	III A अर्द्ध शुष्क पूर्वी मैदानी क्षेत्र	500–600	अजमेर, जयपुर, टोंक एवं दौसा जिले का कुछ भाग	गेहूँ, बाजरा, मूंग, मूंगफली, चवला, सरसों, चना, जौ, ज्वार
7	III B बाढ़ संभाव्य पूर्वी मैदानी क्षेत्र	500–600	अलवर, भरतपुर, धौलपुर, द. सवाईमाधोपुर, दौसा व करौली की कुछ तहसीलें	तिल, बाजरा, गेहूँ, सरसों, चना, मक्का मूंगफली, जौ, ज्वार
8	IV A अर्द्ध आर्द्र द . मैदान एवं अरावली पहाडी क्षेत्र	500–700	भीलवाड़ा, राजसमन्द उदयपुर, चितौड़गढ़ व सिरोही का हिस्सा	मक्का, सोयाबीन, उड़द, ज्वार, गेहूँ, चना, सरसों
9	IV B आर्द्र दक्षिणी क्षेत्र	600–750	बांसवाड़ा, डूंगरपुर उदयपुर, प्रतापगढ के हिस्से	मक्का, धान, रबी, अरहर, सरसों, गन्ना, गेहूँ
10	V आर्द्र दक्षिणी पूर्वी मैदान	750 से ऊपर	बूंदी, कोटा, झालावाड़ व स . माधोपुर का हिस्सा	गेहूँ, सोयाबीन मक्का, धान, उड़द, सरसों,, तोरिया, कपास, गन्ना, अफीम

उत्पादकता 50–70 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। भारत के लगभग 141 मिलियन हैक्टेयर शुद्ध कृषित क्षेत्र में 80 मिलियन हेक्टेयर बारानी या असिंचित है।

शुष्क खेती का तात्पर्य वर्षा द्वारा प्राप्त जल का सुनियोजित संरक्षण व उपयोग करके, उचित सस्य क्रियाओं को अपना कर शुष्क क्षेत्रों हेतु उपयुक्त किस्में व फसलें जो कम पानी चाहने वाली हों, कम अवधि वाली हों, की बुआई करके अधिकतम पैदावार प्राप्त करना है।

शुष्क खेती– शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ वाष्पीकरण की मात्रा (वर्षा, ओस, वर्षण, बर्फ) से प्राप्त जल की मात्रा से अधिक हो, जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध न हो, में नमी संरक्षण एवं समुचित सस्य क्रियाओं द्वारा फसल उत्पादन करना शुष्क खेती है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटनिका के आधार पर परिभाषा ''जहाँ फसल उत्पादन के लिए पानी की उपलब्धता मुख्य समस्या है, वहाँ बिना सिंचाई की खेती को शुष्क खेती कहते हैं।''

असिंचित खेती – असिंचित खेती या बारानी खेती से तात्पर्य बिना सिंचाई के फसलोत्पादन से है, यह प्रायः आर्द्र व अर्द्ध–आर्द्र जलवायु क्षेत्रों में की जाती है। इन क्षेत्रों मे ंवर्षा अधिक व वाष्पीकरण कम होता है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है जो कि भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 10.4 प्रतिशत है। परन्तु राज्य में देश के उपलब्ध जल संसाधनों का मात्र एक प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है। राज्य में कृषि योग्य भूमि का लगभग 70 प्रतिशत भाग वर्षा पर आधारित (बारानी) है। यहाँ फसल उत्पादन वर्षा पर ही निर्भर है। ऐसी परिस्थितियों में शुष्क खेती, अपनाना सर्वोत्तम विकल्प है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली ने राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजना के लिए राजस्थान की कृषि जलवायु को दस भागों में विभक्त किया है। सिंचाई की सम्पूर्ण क्षमता के उपयोग के पश्चात् भी देश के शुद्ध बुआई क्षेत्र का 40 प्रतिशत क्षेत्र बारानी ही रहेगा। बिना सिंचाई के वर्षा आधारित खेती को असिंचित या बारानी खेती कहते हैं। असिंचित खेती को बारानी नम कृषि तथा बारानी शुष्क कृषि असिंचित खेती या बारानी खेती दो भागों में बाँटा जा सकता है।

बारानी नम कृषि में वर्षा की मात्रा पर्याप्त होती है तथा वर्षा का वितरण भी फसल बढ़वार मौसम में उपयुक्त होता है इस प्रकार की कृषि में वर्षा के पानी का निकास एक मुख्य मुद्दा रहता है। जबकि शुष्क कृषि क्षेत्रों में वर्षा तथा वाष्पीकरण की तुलनात्मक मात्रा ऋणात्मक होती है।

राजस्थान के परिपेक्ष्य में शुष्क कृषि का महत्व

राज्य में 70 प्रतिशत क्षेत्रफल असिंचित होने से फसल–उत्पादन वर्षा पर ही निर्भर है। राज्य के पश्चिमी भाग में औसतन वर्षा 100 से 300 मिमी. तथा पूर्वी भाग में 500–1000 मिमी होती है। (देखें राजस्थान के कृषि जलवायु खंड)। राज्य की औसत वर्षा 575.1 मिमी. है। ऐसे में उन्नत शुष्क कृषि तकनीकें अपनाना किसान के लिए फायदेमंद हो सकता है। राजस्थान की निम्न परिस्थितियों के कारण शुष्क खेती को अपनाया जाना जरूरी है–

(1) जलवायु संबंधी कारण– हमारे राज्य में कुल वार्षिक वर्षा का 90 प्रतिशत से अधिक भाग मध्य जून से मध्य सितम्बर तक प्राप्त होता है। मानसून कालमात्र 40 से 80 दिन तक रहता है। वर्षा की अनियमितता के कारण किसान को फसल प्रबन्ध में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में तापक्रम मई तथा जून में 40^{0} से 48^{0} सेल्सियस हो जाता है। वायु की तेजगति से वातावरण की आर्द्रता कम हो जाती है। वाष्पीकरण तेजी से होता है। इसी कारण इन क्षेत्रों में कम अवधि वाली, कम जल माँग वाली, सूखा सहनशील फसलों से ही पैदावार प्राप्त कर सकते हैं। शुष्क कृषि तकनीक से ऐसी फसलों के चयन में मदद मिल सकती है।

(2) मृदा संबंधी कारण–राज्य के सर्वाधिक क्षेत्र में रेतीली मृदायें पाई जाती हैं। बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर, चूरू आदि जिलों में पाई जाने वाली इन मृदाओं की उर्वरा शक्ति बहुत कम है। इनमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 0.5 प्रतिशत से भी कम पाई जाती है। मृदाओं की जलधारण क्षमता बहुत कम है। इसके अलावा शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में अधिक वाष्पीकरण, उच्च तापक्रम व कम वर्षा होने से लवणीयता–क्षारीयता के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे में शुष्क कृषि तकनीक द्वारा नमी संरक्षण के उपाय, मल्व का प्रयोग, कार्बनिक खादों का प्रयोग आदि अपना कर फसल उत्पादन ले सकते हैं।

(3) फसल प्रबंधन संबंधी कारण– शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में किसान अभी जानकारी के अभाव में लंबी अवधि वाली फसलें व कम उपज देने वाली फसलों की खेती कर रहे हैं। किसान द्वारा पौध संरक्षण पर पर्याप्त ध्यान नहीं देने से कम उपज मिल रही है। नमी संरक्षण उपायों से किसानों को अवगत करवाया जाना आवश्यक है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि किसानों को कम अवधि वाली, कम जल मांग वाली फसलों की जानकारी शुष्क कृषि तकनीक द्वारा देकर अधिक पैदावार दिलवा सकते हैं।

शुष्क कृषि के सिद्धांत (Principles of dry farming)

शुष्क कृषि तकनीक को अपनाने की आवश्यकता को देखते हुए हमें इसके सिद्धांतों की जानकारी होनी चाहिए। शुष्क कृषि की सफलता के लिए अग्रांकित सिद्धांतों की पालना की जानी चाहिए–

(अ) नमी संरक्षण का सिद्धांत – ऐसे प्रयास किये जाये जिससे कि वर्षा की प्रत्येक बूंद का मृदा में संरक्षण व फसल उत्पादन में उसका उपयोग किया जा सके। इस हेतु निम्न उपाय अपना सकते हैं–

(1) मृदा जलधारण क्षमता बढ़ाना – इस हेतु रबी की फसल कटते ही गहरी जुताई करनी चाहिए। साथ ही प्रत्येक तीन वर्ष में एक बार 8–10 टन कार्बनिक खाद प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

(2) मल्च का प्रयोग – वाष्पीकरण से होने वाली हानि को रोकने के लिए मृदा सतह को फसल अवशेष, सूखी पत्तियाँ, सूखी घास से ढक देनी चाहिए। इन पदार्थो को मल्च व इस क्रिया को मल्चिंग कहते हैं। वर्षा के बाद 'हो' या कुदाली द्वारा हल्की गुड़ाई करके मृदा की 5 सेमी. मोटी परत बनाते है। जिसे धूल पलवारना (Dust mulching) कहते हैं। इससे नमी संरक्षण में सहायता मिलती है।

(3) पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन हानि को कम करना – वाष्पोत्सर्जन हानि कम करने के लिए वाष्पोत्सर्जन रसायनों का फसलों पर छिड़काव करते हैं। जो पत्तियों के पर्ण रन्ध्र बन्द करके वाष्पोत्सर्जन को रोकने में मदद करते हैं।

(ब) शुष्क कृषि में फसल प्रबंधन के सिद्धांत – शुष्क कृषि में फसल प्रबंध यथा फसलों के चयन, किस्मों के चयन, जुताई, बुआई, खाद–उर्वरक, खरपतवार नियंत्रण आदि में निम्न सिद्धांतो की पालना की जानी चाहिए–

(1) फसलों का चुनाव (Selection of crops)- शुष्क खेती के लिए सूखा सहने वाली, कम अवधि में पकने वाली फसलों का चयन किया जाना चाहिए। जैसे – ज्वार, बाजरा, अरण्डी, मोठ, उड़द, मूंग, कुल्थी, तिल, तारामीरा, कुसुम, चंवला आदि।

(2) किस्मों का चुनाव (Selection of varieties)- फसल विशेष के चयन के बाद उनकी ऐसी किस्मों का चुनाव करें जो कम समय में पककर तैयार हो जाती है तथा अधिक उपज भी देती हो।

(3) खेत की जुताई– खरीफ की फसलों के लिए गहरी जुताई करें, जिससे वर्षा का पानी अधिक से अधिक मात्रा में मृदा सोख सकें। वर्षा ऋतु में एक गहरी जुताई के बाद 2–3 जुताई

सारणी 5.1.2 : शुष्क खेती के लिए फसलों की किस्में

क्र.सं.			
1.	बाजरा	एम.एच.–169, आर.एच.बी.–173, 177	85–90 दिन
2	ज्वार	सी.एस.एच.–14, एस.पी.वी.–96	80–90 दिन
3	मक्का	संकुल अगेती– 76 डी–765, माही कंचन, पीएम.–3, पी.एम.–9, पी.एस.एम.–3, पी.एम.–5	90–100 दिन 85–90 दिन
4	गेहूँ	डी.–134, मुक्ता, राज. 3777,0231,4083,4120,4079,4238	115–120 दिन
5	जौ	आर.डी.–31, आर.डी.– 2508,2624,2660	115 दिन
6	सोयाबीन	जे.एस.–335, एन.आर.सी.–37, जे.एस.– 9560, 20–29, 20–34	90–95 दिन
7	मूंगफली	जे.एल.–24, जी.जी.–2, टी.जी.–39, आर.जे.–425, टी.जी.– 37ए, जी.पी.बी. डी.–2, प्रताप मूंगफली–2	90–95 दिन
8	तिल	आर.टी.–127, आर.टी.–46, आर.टी.–346 टी.सी.–25	75–80 दिन 90–100 दिन
9	सरसों	आर.एच.–30, पूसा जय किसान (बायो–902) पूसा बोल्ड, दुर्गामणी, अरावली, पी.आर.– 15 क्रांन्ति	130–135 दिन
10	उड़द	टी.9, बरखा, पंत यू–31, प्रताप उड़द –1, आर.बी.यू.– 38, के.यू.– 963	85–90 दिन
11	मूंग	के.–851, पूसा बैसाखी, आर.एम. जी–62,268,344, एस.एम.एल.–668, आई. पी.एम.–02–3	60–80 दिन
12	मोठ	आर.एम.ओ.–40, 225,435,257, सीजेड.एम.–2 जडिया, ज्वाला आई.पी.सी.एम.ओ.–880	62–65 दिन 80–90 दिन 90–100 दिन
13	चंवला	सी.–152, एफ.एस.–68, आर.सी.– 19, 101, आर.सी.पी.– 27	65–70 दिन
14	ग्वार	दुर्गापुरा जय, दुर्गापुरा सफेद आर.जी.सी.–936,1003,1055,1002,1017,1038,1031	100–115 दिन 85–90 दिन
15	चना	दोहद यलो, आर.एस. 10, 11, आर.एस.जी.–888, सी.एस.जे.डी.– 884, आर. एस.जी.–894, 973,902,991,974 आर.एस.जी. 2	90–105 दिन 130–135 दिन
16	अरहर	प्रभात, यू.पी.ए.एस.–120, आई.सी.पी.एल.–151,87,88039 टी.–21 . .	115–120 दिन 140–180 दिन

बक्खर या हैरो चलाकर खेत में नमी सुरक्षित कर लेनी चाहिए। रबी की फसलों के लिए गहरी जुताई उपयुक्त रहती है, जिससे नमी का वाष्पीकरण न होने पाये।

(4) बुआई (Sowing) - बारानी खेती की सफलता के लिए बुआई का समय, तरीका, बीज दर, पौध संख्या व बीज उपचार आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(अ) बुआई का समय (Time of sowing)- सही समय पर बुआई न करने से फसल की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिसे बाद में किसी भी तरह पूरा कर पाना संभव नहीं। देरी से बुआई करने पर फसलों की बढ़वार के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता, ऐसे में फसलों को पानी की उस समय कमी हो जाती है जब उनके लिए पानी की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। इस समय पानी न मिलने पर फसल की उपज कम हो जाती है।

उदाहरणार्थ – खरीफ खाद्यान्न फसलें मक्का, ज्वार, बाजरा, आदि की बुआई मानसून की वर्षा शुरू होते ही 25–30 जून तक कर दें। वर्षा में अधिक देरी होने पर खाद्यान्न फसलों की बुआई न करके दलहनी व तिलहनी फसलें बोई जायें। रबी की फसलों की बुआई यथा संभव सितम्बर अंत से शुरू कर दी जावें। गेहूँ व जौ की बुआई अक्टूबर से नवम्बर मध्य तक कर लें। चना और सरसों की बुवाई मध्य अक्टूबर तक कर देनी चाहिए।

(ब) बीज दर (Seed rate)– शुष्क कृषि में अंकुरण की समस्या होने से बीज दर सामान्य से 10–15 प्रतिशत अधिक रखनी चाहिए।

(स) पौध संख्या (Plant population)– शुष्क खेती में मृदाओं में नमी की कमी होने की वजह से पौधों की संख्या सिंचित क्षेत्रों की तुलना में कम रखी जाती है। पौधों की संख्या अधिक हो तो कमजोर व पास–पास उगे पौधों को खेत से निकाल देते है। पौधों में फूल आने से पहले सूखा पड़े तो पहले निचली पत्तियाँ हटा देते है। यदि सूखा अधिक हो तो कतार में एक के बाद एक पौधा हटा देते है। बहुत ज्यादा सूखा पड़ने पर एक कतार के बाद दूसरी कतार के सभी पौधों को हटा देते है।

(द) बीज उपचार (Seed treatment) – गेहूँ, जौ, सरसों आदि के बीज बुआई से पहले 8–10 घंटे पानी में भिगोकर बाद में छाया में सुखाकर बुआई करते हैं। बुआई से पूर्व बीजों को कवकनाशी रसायन जैसे कार्बेण्डाजिम या थायरम से उपचारित करें। अनाज वाली फसलों के बीजों को एजोटोबेक्टर व पी.एस.बी. से तथा दलहनी फसलों को राइजोबियम कल्चर व पी.एस.बी. से उपचारित करते हैं। वर्षा पोषित मक्का के बीजों को बुआई से पूर्व 0.1 प्रतिशत थायोयूरिया के घोल मे 6 घण्टे भिगोकर सुखाने पर बुआई करने से अंकुरण जल्दी होता है तथा सूखा सहन करने की क्षमता बढ़ती है।

(5) बुआई विधि (Sowing method) - फसलों की बुआई पंक्तियों में उनकी आवश्यकतानुसार अंतरण रखते हुए करते हैं।

(6) खाद व उर्वरक – शुष्क खेती में खाद–उर्वरक प्रयोग के समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(i) खरीफ में नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस व पोटेशियम की पूरी मात्रा बुआई के समय नायले से ऊर कर बीज से 3–4 सेमी. गहराई पर देते हैं। शेष नाइट्रोजन खड़ी फसल में फूल आने से पहले जब खेत में पर्याप्त नमी हो तब देनी चाहिए।

(ii) रबी की फसलों में सभी उर्वरकों की पूरी मात्रा एक ही बार बुआई के समय ऊर देते है।

(iii) तीन साल में एक बार जैविक खाद का प्रयोग अवश्य करें।

(iv) उर्वरकों की मात्रा किसी भी फसल के लिए सिंचित क्षेत्र की तुलना में शुष्क खेती में आधी ही देवें।

(v) फसलों के आधार पर सिफारिश किए गये उर्वरकों की मात्रा देवें जैसे–

सारणी – 5.1.3 फसलों में पोषक तत्वों की सिफारिशें

क्र.सं.	फसल का नाम	पोषक तत्वों की मात्रा (किग्रा प्रति हेक्टेयर)	
		नाइट्रोजन	फॉस्फोरस
1.	गेहूँ, जौ, सरसों	30	15
2.	मक्का, ज्वार	40	20
3	दलहनी फसलें	10	20

(7) खरपतवार नियंत्रण (Weed control) - खरीफ की फसलों में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है। खरपतवारों के नियंत्रण के लिए उपयुक्तफसल चक्र अपना कर गर्मी की जुताई करके तथा समय–समय पर निराई–गुड़ाई आवश्यक होने पर खरपतवार नाशी की सिफारिश की गई मात्रा का उपयोग करें।

(8) मिश्रित फसलें (Mixed cropping) - प्रतिकूल मौसम या वातावरण होने पर फसल सुरक्षा हेतु एक ही खेत में एक ही समय एक से अधिक फसलें बोनी चाहिए ताकि एक फसल नहीं होने पर दूसरी फसल से कुछ उपज मिल सके। जैसे – (अ) मक्का की दो कतारों के बीच दो कतारें उड़द (ब) मूंगफली व तिल की मिलवाँ खेती 6:2 के अनुपात की कतारों मे करें। (स) बाजरा + तिल (द) बाजरा + ग्वार आदि। (य) ज्वार + चंवला (हरा चारा) दो–दो कतारों में।

नमी की कमी की दशा में खडी फसलों में यूरिया/डी.ए.पी. के 2 प्रतिशत घोल का छिड़काव से उपज में 10–15 प्रतिशत वृद्धि होती है।

5.2 सस्यावर्तन (फसल चक्र)– परिभाषा, महत्व एवं सिद्धांत (Crop Rotation: Definition, Importance & Principles)

फसल चक्र कृषि का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसे बिना लागत के आदान की संज्ञा दी जाती है। फसल चक्र, फसलों में पोषण प्रबन्धन की विधि के रूप में ही नहीं बल्कि मृदा बाँझपन, मृत मृदा तथा रूग्ण मृदाओं को सुधारने की एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विधि है।

खेत या इसके किसी भाग में फसलों को इस प्रकार अदल–बदल कर बुआई करने की प्रक्रिया को जिसमें मृदा की उत्पादकता को प्रभावित किये बिना अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके, फसल चक्र कहते हैं। यह फसल चक्र एक वर्ष या अधिक के हो सकते हैं। फसल विविधिकरण समय की माँग है तथा किसान की जोखिम कम करने एवं टिकाऊ उत्पादन के लिए बहुत आवश्यक है।

परिभाषा– ''किसी निश्चित क्षेत्र में निश्चित अवधि में फसलों को इस प्रकार हेर फेर कर बोना जिससे कि फसलों से अधिकतम पैदावार प्राप्त हो सके और भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट न हो, सस्यावर्तन (फसल चक्र) कहलाता है।''

सस्यावर्तन के सिद्धांत

प्रायः फसल चक्र एक वर्ष से लेकर तीन वर्ष तक का तैयार किया जाता है। फसल चक्र का नियोजन करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि जिस क्षेत्र के लिए फसल चक्र तैयार किया जा रहा है वहाँ की जलवायु, भूमि व बाजार माँग कैसी है? इसके अतिरिक्त सिंचाई सुविधायें, यातायात सुविधा, किसान की घरेलू आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सस्यावर्तन तैयार किया जाता है। फसल चक्र तैयार करते समय निम्नलिखित सिद्धांतो को ध्यान में रखना चाहिए:–

1. **गहरी जड़ वाली फसलों के बाद कम गहरी जड़ वाली फसलें बोनी चाहिए**– मूसला जड़ वाली फसलों की जड़े मृदा में अधिक गहराई पर जाकर अवमृदा से पोषकतत्व ग्रहण करती हैं। ऐसे में ऊपरी परत में अधिकांश पोषक तत्व ज्यों के त्यों ही रह जाते है। यदि अगले मौसम में गहरी जड़ वाली फसल पुनः बोई गई तो वे पुनः उसी गहराई से पोषक तत्व ग्रहण करेगी इससे मृदा स्तर पर पोषक तत्वों की कमी के साथ–साथ फसल से पैदावार भी कम प्राप्त होगी। इसकी बजाए उथली जड़ व गहरी जड़ वाली फसलों को हेर–फेर कर बोने से मृदा के विभिन्न स्तरों पर पोषक तत्वों में समानता बनी रहती है। **उदारहण**– कपास– गेहूँ, सोयाबीन– गेहूँ, अरहर–गेहूँ
2. **फलीदार फसलों के बाद बिना फलीदार फसलें बोनी चाहिए** – किसी भी सस्यावर्तन में फलीदार फसलों को सम्मिलित किया जाना अच्छे सस्यावर्तन की प्रमुख विशेषता है। फलीदार फसलों द्वारा मृदा में 30–120 किलोग्राम/हेक्टेयर नत्रजन स्थिरीकरण किया जाता है। दलहनी फसलें इनकी नत्रजन की कुल आवश्यकता का लगभग 75 प्रतिशत भाग नत्रजन स्थिरीकरण से पूरा कर सकती हैं। इन फसलों की कटाई के बाद मृदा में काफी मात्रा में नत्रजन (20–60 किलोग्राम नत्रजन/हे.) नत्रजन रह जाती है जिसका उपयोग बाद में बोई गई दूसरी अफलीदार (अनाज वाली) फसलें आसानी से कर लेती है। **उदाहरण** – ग्वार–गेहूँ, उड़द–रबी मक्का, सोयाबीन–गेहूँ, आदि।

सारणी : 5.2.4 भारतीय दशाओं में विभिन्न दलहनी फसलों द्वारा मृदा में नत्रजन स्थिरीकरण

क्र.सं.	नाम फसल	नत्रजन (किग्रा/हेक्टेयर)
1.	उड़द	42.9
2.	मूंग	38.6
3.	चंवला	56.3
4.	सनई	84.7
5.	मटर	66.5
6.	ग्वार	62.4

3. **अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसलों को बोना चाहिए** – अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसल बोने से दूसरी फसल को कम खाद देने की जरूरत पड़ती है साथ ही पिछली फसल को दी गई खाद का सदुपयोग हो जाता है। **उदारहण**– आलू–प्याज, गन्ना–गेहूँ, कपास–चना, मक्का–चना।
4. **अधिक जलमाँग वाली फसल के बाद कम जलमाँग वाली फसल बोई जानी चाहिए**– ऐसा करने से एक तो सिंचाई साधनों का अत्यधिक उपभोग नही करना पडेगा, दूसरे भूमि में लगातार अधिक पानी बना रहने से वायुसंचार तथा जीवाणु क्रियाओं में बाधा रहती है, उससे भी बचा जा सकता है। **उदारहण**– धान–चना, धान–सरसों।

5. **मृदा क्षरण को प्रोत्साहन देने वाली फसलों के बाद मृदा क्षरण अवरोधक फसलें बोनी चाहिए–** ऐसी फसलें जो दूर–दूर लाइनों में बोई जाती है, अधिक निराई–गुड़ाई चाहती है, मृदा क्षरण को बढ़ावा देती है अतः ऐसी हानि को रोकने के लिए मृदा क्षरण अवरोधक फसलें बोनी चाहिए। **उदारहण–** मक्का–बरसीम, कपास–चना, धान–चना।

6. **एक ही कुल की फसलें लगातार नहीं उगानी चाहिए–** लगातार एक ही वानस्पतिक कुल की फसलें बोने से फसलों में रोग, कीट व खरपतवारों का प्रकोप बढ़ता है। अच्छा फसल चक्र वही है जिसमें सम्मिलित फसलें अलग–अलग कुल की होती है। **उदारहण–** धान–गेहूँ, उड़द–सरसों।

7. **फसल चक्र किसान की घरेलू आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर बनाना चाहिए–** किसान को दैनिक जीवन में अनाज, दालें, तेल, वस्त्र आदि की आवश्यकता रहती है। इनकी पूर्ति के लिए किसान को उन्ही फसलों का चुनाव फसल चक्र हेतु करना चाहिए जो उक्त आवश्यकतायें पूरी कर सकें। **उदाहरणार्थ–** अनाज हेतु– धान, मक्का, बाजरा, गेहूँ, आदि दाल हेतु – मूंग, मोठ, उड़द, अरहर, चना आदि खाद्य तेल हेतु– मूंगफली, तिल, सरसों, सोयाबीन आदि।

8. **कृषि साधनों का वर्ष भर क्षमतापूर्ण ढंग से उपयोग–** किसान के पास उपलब्ध कृषि साधनों यथा सिंचाई साधन, खाद, बीज, उर्वरक तथा श्रमिकों का वर्ष भर पूरा–पूरा उपयोग होना चाहिए। फसल चक्र में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। **उदाहरण–** अरहर–गेहूँ–मूंग।

9. **फसल चक्र निकटवर्ती कृषि आधारित उद्योग को ध्यान में रख कर तैयार करना चाहिए–** फसल चक्र में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि निकटवर्ती क्षेत्र में किस तरह कृषि आधारित उद्योग है?जैसे शुगर–मिल होने पर गन्ना, कॉटन मिल होने पर कपास, दाल मिल हेतु दलहनी फसलों तथा तेल मिल हेतु तिलहनी फसलों का समावेश फसल चक्र में किया जाना चाहिए।

10. **लवणीय मृदाओं हेतु फसल चक्र में लवणीयता सहनशील फसल बोनी चाहिए–** अगर खेत का कुछ भाग क्षारीय व लवणीयता से ग्रस्त है तो फसल चक्र में लवणीयता सहनशील फसलें बोयी जानी चाहिए। **उदाहरण–** सनई, ढेंचा, कपास, सरसों, चुकन्दर आदि।

सस्यावर्तन (फसल चक्र) के लाभ–

1. **मृदा उर्वरता में वृद्धि :** फसल चक्र द्वारा मृदा से पोषक तत्वों व नमी का अवशोषण संतुलित रूप से होने के कारण उर्वरता बढ़ती है।

2. **मृदा की भौतिक व जैविक दशा में सुधार :** दलहनी फसलों के समावेश से मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है। दलहनी फसलों द्वारा नत्रजन स्थिरीकरण जीवाणुओं की क्रियाशीलता से मृदा की जैविक दशा भी सुधरती है।

3. **खरपतवार नियंत्रण में सहायता :** खेत में हर वर्ष बरसीम उगाने से कासनी खरपतवार व निरंतर गेहूँ बोने से गेहूँसा खरपतवार की मात्रा बढ़ जाती है। रबी मौसम में एक वर्ष गेहूँ व एक वर्ष बरसीम बोने से कासनी, गेहूँसा आदि खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है। बरसीम की बार–बार कटाई से गेहूँसा नष्ट हो जाता है।

4. **वर्षभर कृषि साधनों का पूर्ण उपयोग :** किसान के पास उपलब्ध कृषि साधनों यथा सिंचाई, खाद, उर्वरक श्रमिकों का वर्ष भर पूरा उपयोग हो जाता है। इससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी आती है।

5. **किसान की आर्थिक दशा में सुधार :** मृदा उर्वरता बढ़ने से मृदा उत्पादकता भी बढ़ती है जिससे प्रति हेक्टेयर अधिक उपज प्राप्त होती है। परिणाम स्वरूप किसान की आर्थिक दशा में सुधार होता है।

6. **किसान की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति :** उचित फसल चक्र अपनाने से किसान की दैनिक घरेलू आवश्यकताओं जैसे खाद्यान्न, दालें, तेल, सब्जियाँ आदि को पूरा करने में मदद मिलती है।

7. **पादप संरक्षण में सहायता :** फसल चक्र में एक ही कुल की फसलें निरन्तर न बोने से फसलों में कीट रोग नियंत्रण हो जाता है।

8. **उचित नियोजन :** जब किसान अपने फार्म (खेत) के लिए फसल चक्र तैयार करता है तो किसान को पहले से ही पता रहता है कि आगामी मौसम में कौन सी फसल बोनी है? उस फसल हेतु उन्नत बीज, खाद उर्वरक, श्रमिक आदि की व्यवस्था पहले से ही कर सकता है। उचित नियोजन से आय में वृद्धि होती है।

9. **मृदा क्षरण रोकने में सहायता :** मृदा क्षरण रोकने में सहायक फसलों का समावेश फसल चक्र में करने से भू–संरक्षण में सहायता मिलती है।

10. **फसल उत्पादों की गुणवत्ता में वृद्धि :** ऐसा देखा गया है कि सही फसल चक्र अपनाने से फसलों पर कीट, रोग, खरपतवारों के प्रकोप मे कमी आती है जिससे फसल उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होता है।

11. **मृदा विकार की कमी :** मृदा की भौतिक, रासायनिक, जैविक दशाओं में सुधार से मृदा विकार में कमी आती है।

12. **मृदा के सभी स्तरों में पोषक तत्व–** मृदा के सभी स्तरों में पोषक तत्वों का उचित संतुलन बना रहता है।

राजस्थान की कृषि जलवायु अनुसार उपयोगी फसल चक्र

(अ) एक वर्षीय फसल चक्र

1. बाजरा–सरसों
2. तिल–गेहूँ
3. मोठ–गेहूँ
4. ग्वार–गेहूँ
5. बाजरा–गेहूँ / मेथी / सरसों
6. अरहर–गेहूँ
7. बाजरा–गेहूँ
8. मूंगफली–गेहूँ / चना / जौ
9. उड़द–गेहूँ
10. सोयाबीन – गेहूँ
11. ज्वार / मूँगफली– गेहूँ / चना
12. धान / ज्वार / मक्का– गेहूँ

(ब) द्विवर्षीय फसल चक्र

1. ग्वार–गेहूँ–बाजरा–चना
2. मक्का–गेहूँ–उड़द–सरसों
3. कपास–गेहूँ–ग्वार–गेहूँ / सरसों

(स) त्रिवर्षीय फसल चक्र

1 मक्का–गन्ना–धान–गेहूँ
2 कपास–मेथी–गन्ना–धान

5.3 मिश्रित फसल– परिभाषा, प्रकार, सिद्धान्त एवं महत्व (Mixed Cropping: Definition, Types, Principles & Importance)

आमतौर पर किसान एक खेत में एक समय एक ही फसल की बुआई करते हैं लेकिन किसान दो या दो से अधिक फसलें भी एक ही खेत में एक ऋतु में उगाता है। हमारे देश में फसल उत्पादन मौसम की प्रतिकूल दशाओं यथा बाढ़, पाला आदि से प्रभावित रहता है। इसके अतिरिक्त कीट व रोगों द्वारा भी कई बार फसलों को भारी क्षति पहुँचती है। इन दशाओं में किसान फसल उत्पादन के प्रति निरन्तर आंशकित रहता है कि उसे अपेक्षित पैदावार मिलेगी या नहीं। ऐसे में मिश्रित फसलें उगाना किसान के लिये लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

मिश्रित फसल की अवधारणा हमारे देश के लिये कोई नवीन नहीं है। प्राचीन काल से मिश्रित खेती हमारी कृषि प्रणाली का एक अभिन्न अंग रहा है। हमारे पूर्वजों ने इसकी संकल्पना मौसम की विपरीत परिस्थियों में फसल सुरक्षा के दृष्टिकोण से की थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता के प्रमुख स्थल कालीबंगा से प्राप्त जुताई की कूड़ों से पता चला है कि उस समय कई फसलों को एक साथ मिलाकर खेती की जाती है। मोहनजोदड़ों में गेहूँ, जौ, चना की फसलों की खेती एक साथ मिलाकर करने के प्रमाण मिले हैं।

परिभाषा –

''एक ही ऋतु में एक ही खेत में एक साथ दो या दो से अधिक फसलों को उगाना मिश्रित फसल कहलाती है।'' दो या दो से अधिक फसलें एक निश्चित दूरी पर पंक्ति में (अन्तःशस्य फसल

तालिका– 5.3.5 मिश्रित फसलोत्पादन एवं सह–फसली खेती में अन्तर

मिश्रित (Mixed Cropping)	फसलोत्पादन अन्तःशस्य (Inter Cropping)
1. मिश्रित फसलोत्पादन का मुख्य उद्देश्य मौसम की किन्ही भी विपरीत परिस्थितियों में (जैसे बाढ़, सूखा व पाले की स्थिति में) कम से कम एक फसल प्राप्त करना हैं।	1. सह–फसली खेती का मुख्य उद्देश्य मुख्य फसल की दो पंक्तियों के बीच की जगह का उपयोग करना है।
2. मिश्रित फसलोत्पादन में सभी फसलों को बराबरी का दर्जा एवं ध्यान दिया जाता है। कोई फसल प्रमुख अथवा गौण नहीं होती है।	2. इस विधि में मुख्य फसल पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
3. लगभग सभी फसलें एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करती हैं।	3. यहाँ प्रमुख एवं गौण फसलों में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है।
4. इसमें फसलों के पकने की अवधि लगभग बराबर होती है।	4. गौण फसल कम समय में पकने वाली होती है तथा इसको मुख्य फसल से काफी पहले काट ली जाती हैं।
5. फसलों को छिड़ककर बोते हैं अथवा बीज मिलाकर कतारों में बोते हैं लेकिन सभी फसलों की बुआई का समय एक ही होता है।	5. दोनों फसलें अलग–अलग कतारों में बोई जाती हैं। बुआई का समय एक भी हो सकता हैं अथवा मुख्य फसल को गौण फसल से पहले बोते हैं।

या सह फसली खेती) या बिना पंक्ति के (मिश्रित फसल) बोई जा सकती है।

मिश्रित फसल तथा अन्तःशस्य खेती में अन्तर तालिका–5.3.5 में दिया गया है।

प्रकार– मिश्रित फसलों के लिए सस्य मिश्रण निम्न प्रकार से किया जाता है:

1. **मिश्रित फसलें (Mixed Crops)** – इस सस्य मिश्रण में फसलों की बुआई व कटाई का समय एक सा रहता है। बुआई से पूर्व सभी बीजों को एक साथ मिलाकर अथवा पंक्तियों में बुआई कर देते हैं। उदाहरण – चना + सरसों, गेंहूँ + चना तथा मक्का + उड़द।
2. **अन्तःशस्य खेती** – इस विधि में दो या दो से अधिक फसलों की बुआई कतारों में की जाती है। इसमें मुख्य फसल (Base crop) की एक अथवा कई, इसी प्रकार सह–फसलों (Intercrop) की एक या ज्यादा कतारें लेना सह–पद्धतियाँ हैं, जो देश के विभिन्न भागों में अपनाई जा रही हैं। इन सबका उद्देश्य है– शुद्ध फसल की तुलना में सह–फसली पद्धति से अधिकतम उपज प्राप्त करना।

सफल अन्तःशस्य खेती के लिए मुख्य बातें:–

अन्तःशस्य खेती का मुख्य उद्‌देश्य प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक उपज प्राप्त करना एवं उपलब्ध प्राप्त स्रोतों को प्रभावी तरीके से प्रयोग करना है। सफल अन्तःशस्य खेती के लिए कुछ मुख्य बातें निम्न हैं–

1. पोषक तत्वों की आवश्यकता अलग–अलग समय पर होनी चाहिए। मिश्रित फसलें परस्पर व्याप्त नहीं होनी चाहिए। जैसे– मक्का+उड़द/मूंग। मूंग की फसल की बुआई के 30–35 दिन बाद उपयुक्त पोषण चाहिए जबकि मक्का की फसल को 50 से 55 दिन बाद।
2. मिश्रित फसलों में प्रकाश के प्रति प्रतिस्पर्धा कम से कम होनी चाहिए।
3. मिश्रित फसलों में आपस में सामंजस्य होना चाहिए।
4. मिश्रित फसलों के पकने के समय में कम से कम 30 दिन का अंतर होना चाहिए।
5. मिश्रित फसलों में कार्बनडाइ–ऑक्साइड और जल के प्रति प्रतिस्पर्धा कम से कम होनी चाहिए।

अन्तःशस्य खेती के प्रकार:–

मुख्य प्रकारों का विवरण निम्न है–

(I) समान्तर सहफसली खेती (Parallel Intercropping) : दो फसलों को इस तरह साथ–साथ उगाना है, ताकि एक–दूसरे के संवर्धन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े तथा दोनों में शून्य प्रतिस्पर्धा (Zero competition) हो। साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का समय और क्षेत्र के अनुरूप बेहतर ढंग से इस्तेमाल भी सुनिश्चित हो। इस पद्धति में ऐसी फसलें चुनी जाएँ कि जब तक मुख्य फसल पूर्ण बढ़वार पर आवे तब तक सह–फसल पककर कट जाए। उदाहरण के तौर पर कपास + उड़द/मक्का + उड़द, गन्ना + गेहूँ। इस विधि में एक समानान्तर फसल दूसरी फसल पर कोई स्पष्ट प्रतिस्पर्धात्मक प्रभाव डाले बिना पक सकती है। कुल मिलाकर ऐसा करने से समय व स्थान का सही सदुपयोग हो जाता है और अधिक पैदावार एवं लाभ मिलता है।

(ii) सहचर फसलें (Companion Crops) – इस अन्तःशस्य में ऐसी फसलों का चुनाव करते है। जिनकी उपज एकल फसल के समान ही प्राप्त होती है। उदाहरण– मक्का की दो पंक्तियों के बीच उड़द की दो पंक्तियाँ एवं गन्ना + आलू।

(iii) रक्षक फसलें (Guard Crops) – इस वर्ग में मुख्य फसल को खेत के मध्य में बो देते हैं। मुख्य फसल की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर 10–15 पंक्तियाँ गौण फसल की बो देते हैं। उदाहरण – गन्ने की फसल के चारों ओर सनई या सोयाबीन के चारो ओर मक्का की खेती करना।

(iv) सहायक अथवा वृद्धि कारक फसलें (Augmenting Crops) – इस सस्य मिश्रण में मुख्य फसल की उपज बढ़ाने के लिए अन्य गौण फसलें उसमें मिला दी जाती हैं तथा मिश्रण की कुल उपज, एकल फसलों की उपज से अधिक होती है। उदाहरण – बरसीम के साथ सरसों की बुआई करना। पहली कटाई के समय जब बरसीम छोटी होती है, सरसों की अच्छी वृद्धि हो चुकी होती है। चारे की अधिक मात्रा बरसीम की पहली कटाई में ही मिल जाती है।

वृद्धि कारक शस्य खेती मुख्य एवं गौण फसल की पौधों की संख्या के अनुसार दो प्रकार से की जा सकती है।

(अ) धनात्मक क्रम अन्तःशस्य (Additive Series Intercropping) : इसमें मुख्य फसल के प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या एकल फसल के समान ही रहती है तथा अन्तःशस्य फसल में पौधों की संख्या एकल फसल से कम रहती है। इसमें फसल ज्यामिति में बदलाव कर अन्तःफसल को समायोजित किया जाता है। जैसे गन्ने की 90 सेन्टीमीटर की दूरी पर बुआई की गई पंक्तियों के बीच आलू की एक पंक्ति लगाना। भारत में इस प्रकार की अन्तःशस्य खेती प्रचलित है।

(ब) प्रतिस्थापन क्रम अन्तःशस्य (Replacement Series Intercropping) : इस अन्तःशस्य में दोनों ही फसले मुख्य होती है और कोई फसल गौण फसल नहीं होती है। अतः एक फसल की पौध संख्या दूसरी अन्तःशस्य फसल की प्रतिस्थापन दर निर्भर करेगी। जैसे कि गेहूँ एवं सरसों की अन्तःशस्य खेती में गेहूँ की दस पंक्तियों के बाद सरसों की एक पंक्ति की बुआई करना।

(v) पट्टीदार सहफसली खेती (Strip Intercropping): पट्टी पर इंटरक्रॉपिंग (Intercropping on Strips) – फसलों की पट्टियों या कतारों में बुआई करते समय अलग–अलग, लेकिन निकटवर्ती खण्डों में भिन्न किस्मों की फसलों की बुआई की जाती है वास्तव में एक–जैसी फसल में भी ऐसे ही होता है, लेकिन ये खण्ड इतने पास होते हैं कि ये एक–दूसरी फसल को काफी प्रभावित कर सकते हैं यह व्यवहार उस स्थिति में अधिक उपयोग रहता है जहाँ ऊँचे कद की फसलों को हवा और छाया का रुख ध्यान में रखते हुये समकोण पर पट्टियों को बोया जाता है, उदाहरण के तौर पर चुकन्दर और सोयाबीन को छाया देने के लिए मक्का तथा टमाटर को छाया देने के लिए जई बोते है इस पद्धति में कम से कम एक फसल से तो अच्छे विकल्प की संभावना रहती है, जबकि एक जैसी (समान कद/ऊँचाई वाली) फसलों में स्थायी रूप से छाया रहा करती है।

(vi) अविराम अन्तःसस्य (Relay Intercropping) : रिले इंटरक्रॉपिंग (Relay intercropping) – इस पद्धति से वर्ष में कम से कम 4 फसलें ली जा सकती है। फसल बुआई के क्षेत्र में रिले दौड़ की तरह होड़ होती है जिसमें तेजी के साथ एक फसल के बाद दूसरी फसल उगाई जाती है अर्थात् पहली फसल की कटाई के तुरन्त बाद अथवा उस फसल के पकने के समय ही दूसरी फसलें बो देते हैं जैसे– बिहार, पूर्वी उ.प्र. एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्र में धान पकने की खड़ी फसल में खेसारी की बुआई अथवा धान पकने की अवस्था पर चने की बुआई अथवा धान कटने के तुरंत बाद बरसीम की बुआई करना।

(vii) बहुस्तरीय या बहुमंजलीय अन्तःशस्य (Multi-tier or Multi-Storied Intercropping) : यह पद्धति प्राकृतिक रूप से उगने वाले पेड़–पौधों (वनों में) की तरह विभिन्न ऊँचाई वाली फसलों की तरह हैं, लेकिन इसमें फसलों को ऐसे व्यवस्थित करते हैं कि अनेक स्तरों का लाभ (हवा, प्रकाश, स्थान) का लिया जा सके, जैसे–नारियल के पूर्ण विकास में 4–7 वर्ष लगते हैं अतः नए नारियल के बगीचे अथवा पुराने नारियल के बाग में काली मिर्च, सुपारी (एरेकानट), लौंग, कहवा, अनन्नास आपस में अंतःवर्ती फसल पद्धति में लिया जाता है जिस पर अनुसंधान कार्य केन्द्रीय बागवानी फसल अनुसंधान संस्थान कासरगोड (केरल) में चल रहा है। नारियल के तने पर काली मिर्च के बेल 5–8 मीटर ऊँचाई तक चढ़ जाती है उसके नीचे कहवा और दालचीनी तथा सबसे नीचे अनन्नास लगाया जाता है। ताड़ अथवा सुपारी (एरेकानट) के पेड़ काफी ऊँचे निकल जाते हैं अतः इन्हें भी इस पद्धति में ले लिया जाता है। उड़ीसा में नारियल + केला + धान साथ–साथ बहु–मंजिली खेती के रूप में लेते हैं। विभिन्न प्रकार के शस्य मिश्रण के उदाहरण सारणी 5.3.6 में दिये जा रहे हैं।

सारणी 5.3.6 : विभिन्न प्रकार के सस्य मिश्रण

अदलहनी व दलहनी सस्य मिश्रण	अदलहनी फसलों का सस्य मिश्रण	असिंचित क्षेत्र के लिए सस्य मिश्रण
बाजरा + मूंग	गेहूँ + अलसी	बाजरा + मूंग
ज्वार + उड़द	गन्ना + गेहूँ	बाजरा + मोठ
बाजरा + मोठ	कपास + तिल	बाजरा + ग्वार
मक्का + सोयाबीन	जौं + सरसों	मोठ + तिल
ज्वार + चंवला	–	
मक्का + उड़द	–	गेहूँ + चना
गेहूँ + चना	–	गेहूँ + सरसों

मिश्रित फसल /अन्तःशस्य के सिद्धान्त (Principles of Mixed Cropping/ Intercropping)

मिश्रित फसल हेतु सस्य मिश्रण तैयार करते समय अग्रअंकित मुख्य सिद्धान्तों की पालना की जानी चाहिए–

1. मिश्रित फसल हेतु फसलों का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए कि फसलें उस क्षेत्र की जलवायु, भूमि व सिंचाई आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त हो।

2. अदलहनी फसलों के साथ दलहनी फसलों का मिश्रण किया जाना चाहिए। दलहनी फसल की जड़ों पर पाई जाने वाली ग्रन्थियों में वायु की नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करने वाले लाभदायक जीवाणु होते हैं। ये जीवाणु मृदा में नाइट्रोजन स्थिर करके मृदा में उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं जिससे अदलहनी फसल से भी अधिक उपज प्राप्त होती है। जैसे – बाजरा + मूंग, बाजरा + मोठ, मक्का + उड़द।
3. सीधी बढ़ने वाली मुख्य फसलों के साथ, भूमि पर फैलने वाली फसलें बोयी जानी चाहिए। जैसे – मूंग, सोयाबीन, उड़द आदि भूमि पर अधिक फैलती हैं। गेहूँ, मक्का, ज्वार, जौ, सीधी बढ़ती हैं। फैलने वाली फसलें मृदा कटाव रोकने के साथ–साथ वाष्पीकरण द्वारा होने वाली जल हानि को भी रोकने में सहायक हैं। जैसे– ज्वार + चंवला, बाजरा + ग्वार।
4. एक ही प्रकार के कीट व रोगों की शरण देने वाली फसलों का चयन मिश्रित फसल के लिए नहीं करना चाहिए। जैसे – मक्का, बाजरा, ज्वार का तना छेदक तीनों फसलों को हानि पहुँचाता हैं। इस तरह का सस्य मिश्रण न करें।
5. गहरी जड़ वाली फसलों के साथ उथली जड़ वाली फसलें बोयी जानी चाहिए। इससे दोनों फसलें पोषक तत्व एवं नमी का अवशोषण मृदा की अलग–अलग गहराई से कर सकेंगी तथा दोनों फसलों में पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता भी नहीं होगी। जैसे – मक्का + अरहर, मक्का + उड़द आदि।
6. मिश्रित फसल हेतु सस्य मिश्रण इस प्रकार का हो कि चुनी गई फसलों में प्रकाश, नमी व स्थान के लिए अधिक प्रतियोगिता न हो। जैसे– बाजरा + मोठ, चना + सरसों।
7. मिश्रित फसल हेतु मिश्रण में काम में ली जाने वाली फसलों की पोषक सम्बंधी आवश्यकतायें एक जैसी हों। जैसे – उड़द + तिल, मूंगफली + बाजरा, मक्का + कपास आदि।
8. हल्की मृदाओं (कम उर्वर मृदाओं) में दलहनी फसलों को सस्य मिश्रण में अवश्य स्थान देवें। राजस्थान के शुष्क मैदानी क्षेत्रों (बीकानेर, चुरू) में बाजरा के साथ मोठ या ग्वार का मिश्रण उपयुक्त है। साथ ही दक्षिण राजस्थान में मक्का के साथ उड़द का मिश्रण उपयुक्त है।

मिश्रित फसल का महत्व

1. **फसलों से अधिक पैदावार प्राप्ति–** अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि दलहनी व अनाज वाली दोनों फसलों को साथ मिलाकर बाने से दोनों फसलों से अधिक उपज प्राप्त होती है।
2. **प्रतिकूल मौसम, जलवायु दशाओं के विरूद्ध बीमा–** मौसम के प्रतिकूल प्रभाव से एक फसल क्षति ग्रस्त हो जाती है तो दूसरी फसल से कुछ उपज अवश्य मिल जायेगी। जैसे– गेहूँ + सरसों के मिश्रण में वर्षा के प्रभाव से सरसों की फसल को नुकसान होने पर कुछ गेहूँ की मिल जायेगी। इसी प्रकार सिंचाई जल की कमी होने पर गेहूँ की अपेक्षा सरसों की उपज अच्छी प्राप्त हो सकेगी।
3. **मृदा कटाव को रोकने में मदद–** सीधी बढ़ने वाली व फैल कर चलने वाली दोनों फसलें साथ–साथ बोने से मृदा कटाव में कमी आती है क्योंकि भूमि पर दोनों फसलें अधिकतम स्थान पर आवरण का कार्य करती है। वर्षा की बूंदो का सीधा प्रभाव मृदा पर नहीं पड़ता साथ ही पौधों की जड़ें मृदा को बांधकर भूसंरक्षण में सहायता करती हैं।
4. **खरपतवार नियंत्रण में सहायता–** दो या दो से अधिक फसलों का सस्य मिश्रण प्रयोग करने से मृदा वनस्पति से पूर्णत आच्छादित हो जाती हैं, इससे खरपतवारों को फैलने हेतु स्थान नहीं मिलता। मक्का + उड़द या ज्वार + चंवला बुआई करने पर भूमि वनस्पति से ढक जाती है तथा खरपतवार नियन्त्रण में सहायता मिलती है।
5. **कीट व रोग नियंत्रण में सहायता–** एक ही खेत में विभिन्न फसलें मिश्रित रूप से उगाने पर रोग व कीट का व्यापक प्रभाव किसी एक फसल पर होने की स्थिति में दूसरी फसलें बचाई जा सकती है। कपास + मोठ बुआई करने पर कपास में जड़ गलन रोग कम हुआ। चना + अलसी बुआई करने पर चने में उखटा में कमी देखी गई है। गेहूँ + चना या गेहूँ + सरसों बोने पर गेहूँ में रस्ट रोग के प्रभाव में कमी।
6. **सूर्य के प्रकाश का प्रभावी उपयोग–** मक्का, ज्वार, बाजरा आदि फसलें तीव्र प्रकाश में प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन बनाने में सक्षम है, जबकि दलहनी फसलों को अपेक्षाकृत कम प्रकाश तीव्रता की आवश्यकता रहती है। मिश्रित फसलें बोने पर पूरा क्षेत्र वनस्पति से ढ़क जाता है। मक्का, ज्वार, बाजरा तीव्र प्रकाश का उपयोग कर लेते हैं इन्हीं फसलों की छाया से दलहनी फसलों को कम प्रकाश मिलने से इनमें किसी तरह की प्रतिस्पर्धा नहीं होगी तथा इस प्रकार दोनों तरह की फसलों से अधिक पैदावार प्राप्त होती है।
7. **भूमि का उचित उपयोग–** मिश्रित फसलें बोने से भूमि की बचत होती है। किसान जिन फसलों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी अधिक होती है उन फसलों के मध्य फसल उगाकर भूमि का उचित उपयोग कर लेते है। जैसे – कपास + तिल, कपास + मूंग।

8. **कृषक की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति–** मिश्रित फसलें बोने से किसान को कम क्षेत्र से ही अनाज, दाल, तिलहन, मसाले वाली फसलों की उपज प्राप्त हो जाती है। इससे घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।
9. **मृदा उर्वरता बनाये रखने में सहायक–** मिश्रित फसलें मृदा उर्वरता को बनाये रखने में सहायक हैं। मिश्रित फसल में इनकी जड़ों द्वारा विभिन्न गहराइयों से पोषक ग्रहण किये जाते है। साथ ही दलहनी फसलों को मिश्रण में स्थान देने पर मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण अधिक होता है। जिससे मृदा उर्वरा शक्ति बढ़ती है।
10. **पशुओं हेतु पौष्टिक चारे की प्राप्ति–** मिश्रित फसलों के चारे पशुओं के लिए अधिक पौष्टिक व स्वादिष्ट होते हैं जैसे – मक्का + लोबिया, बरसीम + सरसों, जई + मेथी।

मिश्रित फसलों से हानियाँ (Disadvantages of Mixed Cropping)

मिश्रित फसलें बोने से विभिन्न परिस्थितियों में कुछ हानियां भी होती है जो इस प्रकार है:–

1. मिश्रित फसलें बोने से खेत में निराई–गुडाई हेतु कृषि यंत्रों के प्रयोग में कठिनाई आती है।
2. मिश्रित फसलों में खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण करने में भी कठिनाई होती है। जैसे मक्का + उड़द में खरपतवारनाशी रसायन एट्राजिन प्रयोग करने से उड़द की फसल नष्ट हो जायेगी। गेहूँ + चना के खेत में 2,4 –डी खरपतवार नाशी का प्रयोग करने पर चने की फसल को हानि होगी।
3. मिश्रित फसलों के पकने का समय अलग–अलग होने पर फसल काटने में कठिनाई होती है। मिश्रित फसलों में मशीनों से कटाई कर पाना भी असंभव है।
4. मिश्रित फसल में कीट का प्रकोप होने पर उनकी रोकथाम के लिए कीटनाशी या कवकनाशी रसायनों का प्रयोग मे कठिनाई आती है।
5. मिश्रित फसलों द्वारा शुद्ध बीज उत्पादन कर पाना असंभव है।
6. फसलों के गुणों मे कमी आती है, कभी–कभी फसलों की उपज भी कम हो जाती है। फसल उत्पादन के गुणों में कमी आने से उत्पादन का बाजार मूल्य भी कम प्राप्त होता है।
7. कई बार फसलों में पोषक तत्व, प्रकाश, जल आदि हेतु प्रतिस्पर्धा बढ़ने से फसलों की उपज में कमी आ जाती है।

5.4 भू–परिष्करण : उद्देश्य, परिभाषा एवं प्रकार

खेती में भू–परिष्करण क्रियाओं का विशेष महत्व हैं। खेती में प्रथम कदम भू–परिष्करण का ही होता है जिसमें मिट्टी की दशाओं को बीज एवं पौध वृद्धि के अनुकूल बनाया जाता है। मृदा को तैयार करके भूमि में फसलों की वृद्धि के लिए अनुकूल भौतिक परिस्थितियाँ पैदा करने की क्रिया को भू–परिष्करण कहते हैं।

भूमि को खोदने तथा भुरभुरी करने का कार्य शुरू में मानव ने पत्थर व हड्डियों के औजार बनाकर शुरू किया था। जेथ्रोटूल ने सन् 1731 में भू– परिष्करण का वैज्ञानिक आधार दिया। उसकी यह अवधारणा थी कि पौधे मिट्टी के बारीक कणों का अवशोषण करके बड़े होते हैं, इसलिये किसी प्रकार मिट्टी के कणों को बारीक बनाया जाये। उन्नीसवीं सदी में प्रीस्टले तथा लीबेग ने बताया कि भू–परिष्करण से मृदा में वायु संचार बढ़ता है। बाद में कई वैज्ञानिकों ने भू–परिष्करण द्वारा खरपतवारों को नष्ट करना भी बताया है।

18 वीं शताब्दी में मोल्ड बोर्ड हल, स्टील हल तथा बैल एवं घोड़ा चलित हल का विकास तथा डिस्क हैरों एवं कल्टीवेटर के विकास से भू–परिष्करण क्रियाओं का वैज्ञानिक महत्व प्रतिपादित किया। मृदा की भौतिक दशा को उसकी वपन योग्यता कहते हैं। मृदा की वपन योग्यता, मृदा समुच्चयन एवं उनका स्थायित्व, नमी, वायु संचार, अन्तःस्पन्दन, जल निकास, जल ग्रहण करने की क्षमता पर निर्भर करती है। भू–परिष्करण का मुख्य उद्देश्य मृदा की भौतिक दशा में सुधार लाना व उसकी वपन योग्यता (soil tilth) को बढ़ाना है। भू–परिष्करण द्वारा मिट्टी के ढेलों के आकार, मृदा में जैविक पदार्थ तथा पानी एवं वायु की मात्रा एवं वितरण तथा मृदा कणों का घनत्व एवं पेंकिग को प्रभावित कर खेत की उपयुक्त भौतिक दशा तैयार करते है।

उद्देश्य

भू–परिष्करण का मुख्य उद्देश्य है कि खेत या बीज क्यारी ऐसा तैयार हो कि बीज का अंकुरण, पौधों की वृद्धि तथा विकास ठीक से हो सके, खरपतवार नष्ट हो जाएँ तथा के पौधों के बढ़ने तथा फूलने–फलने में कोई बाधा न पहुँचे। भू–परिष्करण के उदे्श्यों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

1. **खरपतवार नष्ट करना** – अनेक तरह की आवांच्छित वनस्पति मृदा सतह पर रहने से नमी पोषक तत्वों की हानि होती है। कर्षण विधियों से खरपतवारों को नष्ट कर फसल को इनकी प्रतिबन्धता से बचाया जाता है।
2. **मृदा को ऊपर नीचे करना** – खेत में नीचे की मृदा ऊपर सतह पर ऊपर की नीचे चली जाती है, जिससे पौधों को अधिक पोषक तत्व मिलते हैं। गर्मी की जुताई करते समय मिट्टी पलटने वाले हल से ये क्रिया भारी भूमि में तीन वर्ष में एक बार करनी चाहिये।

3. **अव मृदा की कठोर सतह को तोड़ना** – काफी कर्षण कार्य करने से मृदा के नीचे कठोर सतह का निर्माण हो जाता हैं, जिससें पानी व हवा का आवागमन रूक जाता है। इस प्रकार की सख्त सतह को भू–परिष्करण के विशेष यन्त्रों द्वारा तोड़ा जाता है।

4. भू–परिष्करण से सतह पर पिसकर फसल के अवशेष मृदा के अन्दर दब कर सड़ने के बाद पोषक तत्वों में बदल जाते हैं। जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

5. **खड़ी फसलों में अन्तरशस्य क्रियाएँ करना** – खड़ी इसमें फसलों सिंचाई के बाद सतह पर पपड़ी व दरारों को तोड़ना, खरपतवार हटाना, नत्रजन को मृदा में मिलाना तथा मृदा की सतह पर पलटवार आदि करना आते हैं।

6. मृदा संरक्षण खेत में जल निकास की व्यवस्था डोलियों एवं नाली का निर्माण एवं पलवार तैयार कर मृदा अपरदन की गति को कम करना।

7. **कीट–पंतगो का नष्ट होना** – कर्षण क्रियाओं से मृदा के अन्दर छुपे हुये कीड़े मकोड़े सतह पर आ जाते है व परजीवी पशु–पक्षी इनका भक्षण कर लेते हैं तथा कुछ बाहर के वातावरण से नष्ट हो जाते हैं।

8. **मृदा में सूर्य का प्रकाश पहुँचाना** – मृदा के भुरभुरी होने पर हवा के साथ सूर्य का प्रकाश भी अन्दर घुस कर भूमि को गर्म करता है तथा लाभकारी सूक्ष्म जीवों को शक्ति व अवांछित जीवों को हानि पहुँचाता है।

9. **भूमि आकृति तैयार करना** – भूमि की सतह की आकृति को बदलकर मेड़ एवं कूंड बनाना, ऊँची उठी क्यारी तैयार करना सिंचाई एवं जल निकास की नालियाँ एवं डोलियाँ बनाने के कार्य फसल को उपयुक्त भौतिक दशा प्रदान के लिये किए जाते हैं।

10. पानी व हवा की उपयुक्त मात्रा होने से बहुत सी रासायनिक व जीव विद्या सम्बन्धी क्रियाएँ समान रूप से होती रहती है, जिससे जैवांश पदार्थ सड़कर पोषक तत्वों में बदल जाते हैं। वायु का लगातार भूमि में जाना व भूमि से गैसों का हवा में मिलना भी आवश्यक है। इससे वायुमण्डलीय ऑक्सीजन (O_2) मृदा में मिलती है व मृदा की कार्बन डाइ ऑक्साइड वायुमण्डल में आती है। पौधों की जड़ों के लिये ऑक्सीजन का लगातार बराबर मात्रा में मिलना आवश्यक है, अन्यता अधिक (CO_2) होने से जड़ो की श्वसन क्रिया में बाधा पहुँचेगी। जैवांश पदार्थो के सड़ने से भी अधिक (CO_2) इकट्ठी होती है व इसकी मात्रा 0.2 से 0.3 प्रतिशत तक हो जाती है। अतः इसकी मात्रा सीमित रखने के लिये लगातार वायु संचार होना आवश्यक है।

भू–परिष्करण के प्रकार

कर्षण की क्रियाएँ सभी स्थितियों में एक समान नहीं हो सकती। कर्षण क्रियाएँ पिछले मौसम में पैदा की गई फसल आगामी मौसम में पैदा की जाने वाली फसल, खरपतवारों की स्थिति, तथा मिट्टी के प्रकार एवं जलवायु पर निर्भर करती है।

मिट्टी की भौतिक दशा में बदलाव की मात्रा, प्रकार तथा क्रमिकों क्रियाओं के आधार पर खेत तैयार करने या क्यारी निर्माण के आधार पर परम्परागत रूप से भू–परिष्करण को दो भागों मे बांटा गया है।

परम्परागत रूप से कर्षण क्रिया सामान्यतः दो प्रकार की होती है :

(1) प्रारम्भिक भू–परिष्करण

(2) द्वितीयक भू–परिष्करण

1. **प्रारम्भिक भू–परिष्करण** – बीज बोने से पहले भूमि पर की जाने वाली क्रियाओं को प्रारम्भिक भू–परिष्करण कहते हैं। इन क्रियाओं को समय पर नही करें तो फसल उगाने के लिये मृदा की वपन योग्यता अच्छी नहीं रहेगी। प्रारम्भिक भू–परिष्करण में क्रमानुसार बहुत सी क्रियायें आती है, जैसे खेत की जुताई करना, ढेले तोड़ना, समतल करना, हैरो चलाना, खाद व उर्वरक मिलाने के लिये कल्टीवेटर चलाना संघनन के लिये पाटा चलाना तथा क्यारियाँ बनाना शामिल है। इसमें भारी कर्षण यन्त्रों का उपयोग किया जाता है।

2. **द्वितीयक भू–परिष्करण** – खेत में बीज की बुआई के बाद जो भी अन्तरशस्य क्रियायें की जाती है वे द्वितीयक भू–परिष्करण में आती हैं। अन्तरशस्य क्रियाओं में अंकुरण कम होने पर पौध रोपण करना, अधिक पौधों की संख्या होने पर पौध कम करना, खरपतवार निकालना, पलवार बनाना, उर्वरकों को मिलाना, मिट्टी चढ़ाना, दवाईयों का छिड़काव करना, फसलों को गिरने से बचाना, जड़ों की वृद्धि के लिये वायु संचार बढ़ाना, व अन्य महत्वपूर्ण शस्य क्रियाएँ शामिल हैं। द्वितीयक भू–परिष्करण में मुख्य रूप से हल्के कर्षण यन्त्रों का प्रयोग होता है।

आधुनिक भू–परिष्करण

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह माना जाता है कि कृषकों द्वारा अपनाया जाने वाला परम्परागत भू–परिष्करण टिकाऊ कृषि की कसौटियों पर खरा नहीं उतरता। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

1. आधुनिक कृषि यन्त्रों जैसे कि ट्रैक्टर आदि से बार–बार एक ही गहराई पर जुताई करने से मृदा के अधों सतह में कड़ी पपड़ी–सी बन जाती है जिससे मृदा में जल का अन्तःश्रवण कम होता है तथा भूक्षरण की सम्भावना बढ़

जाती है।

2. अति भू–परिष्करण के कारण ज्यादा जैव ईधन (पेट्रोल, डीजल) से हानिकारक गैसे निकलती रहती हैं जिससे हमारा पर्यावरण दिनों–दिन प्रदूषित होता जा रहा है।
3. अति भू–परिष्करण के कारण मृदा में विद्यमान कार्बनिक पदार्थ जल्दी सड़–गल जाते है, जिससे मृदा में ह्यूमस का स्तर गिर जाता है तथा मृदा की पोषक तत्वों एवं जल धारण करने की क्षमता कम हो जाती है।
4. अति कर्षित भूमियों में मृदाक्षरण की सम्भावना और ज्यादा बढ़ जाती है।
5. अति–भूपरिष्करण में प्रर्याप्त समय, श्रम एवं धन खर्च होता है।
6. अति–भूपरिष्करण के कारण प्रक्षेत्र की सस्य सघनता कम हो जाती है।
7. अति–भूपरिष्करण के कारण खेती की लागत बढ़ जाती है।

टिकाऊ उत्पादन के लिए परम्परागत भू–परिष्करण की सभी क्रियाएँ आवश्यक नहीं हैं। इस परिकल्पना के सत्यापन के लिये घटती दर से भू–परिष्करण सम्बन्धी प्रयोग किये गये तथा उनके बिना उपज में क्षति के भू–परिष्करण की कुछ क्रियाओं को कुछ विशेष तकनीकों को अपनाकर कम कर सकते हैं, जिनको आधुनिक भू–परिष्करण के नाम से जाना जाता है।

''आधुनिक भू–परिष्करण का तात्पर्य उन भू–परिष्करण क्रियाओं से है जिनका क्रियान्वयन वर्तमान में विद्यमान भू–परिष्करण से उत्पन्न विकारों को दूर करने के लिए किया गया है।'' बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता बनाए रखना आवश्यक है। इस दिशा में भू–परिष्करण द्वारा फसल प्रबन्धन एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। 1960 के दशक में खरपतवार नासियों के फसल प्रबन्धन में उपयोग से सघन या परम्परागत भू–परिष्करण का सिद्धान्त अब न्यूनतम या जीरो भू–परिष्करण का रूप ले चुका है। इसके तहत् कम किया भू–परिष्करण एवं संरक्षण भू–परिष्करण, शून्य भू–परिष्करण को शामिल किया जाता है।

कम किया हुआ भू–परिष्करण – आधुनिक भू–परिष्करण की वह प्रणाली जिसमें प्राथमिक भू–परिष्करण की क्रियाओं का द्वितीयक भू–परिष्करण विधियों के तालमेल से किया जाता है। जिससे कि भू–परिष्करण की परम्परागत रूप से की जाने वाली क्रियाओं की संख्या कम हो जायें।

न्यूनतम भू–परिष्करण – आधुनिक भू–परिष्करण की वह प्रणाली जिसमें भू–परिष्करण की संख्या को उसी हद तक कम किया जाता है जिससे कि फसल की न्यूनतम भू–परिष्करण आवश्यकता पूरी हो जाये तथा उपज में कोई क्षति न आये न्यूनतम भू–परिष्करण कहलाता है। इसी प्रकार कम किया हुआ भू–परिष्करण के तहत् न्यूनतम भू–परिष्करण का (Minimum tillage) प्रतिपादन किया गया है।

शून्य भू–परिष्करण – भू–परिष्करण की वह प्रणाली जिसमें फसल की बुआई बिना क्यारी या खेत की तैयारी से सीधे ही मिट्टी में उचित गहराई पर पूर्व फसल के अवशेषों के बीच कर दी जाती है शून्य भू–परिष्करण कहलाता है।

संरक्षण भू–परिष्करण – वह भू–परिष्करण जो किसानों द्वारा कई वर्षों से परम्परा के रूप में फसलोत्पादन के लिए किया जा रहा है। इसे स्वच्छ भू–परिष्करण भी कहते है। इसमें प्रारम्भिक एवं द्वितीयक भू–परिष्करण क्रियाएँ शामिल है। इस प्रकार का विशेष उद्देश्यीय भू–परिष्करण जिसमें कर्षण क्रियाओं की तीव्रता परम्परागत भू–परिष्करण से कम होती है। इसमें फसल अवशेषों को भूमि में मिलाने या हटाने के बजाए भूमि की सतह पर ही बनाए रखते है तथा मृदा एवं जल संरक्षण का विशेष ध्यान रखा जाता है।

अमेरिका के The Conservation Technology Information Center (CTIC, 1993) के अनुसार संरक्षण भू–परिष्करण वह कर्षण एवं बुआई की पद्धति है जिसमें बुआई के पश्चात् कुल भूमि का 30 प्रतिशत भाग हमेशा पूर्व फसल अवशेषों से घिरा रहता है जिससे जल एवं वायु द्वारा मृदा अपरदन कम हो। इसी प्रकार जहाँ वायु अपरदन की समस्या होती है वहाँ कम से कम 1120 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से वायु अपरदन के क्रान्तिक समय भूमि पूर्व अवशेषों से घिरी हो।

संरक्षण भू–परिष्करण को निम्न चार उप भागों मे बाँटा गया है।

1. शून्य भू–परिष्करण (Zero Tillage, No Till, Slot Planting, Sod Planting, Direct drilling)
2. कम किया हुआ भू–परिष्करण (Reduced Tillage)
3. ठूंठ पलटवार भू–परिष्करण (Stubble Mulch Tillage)
4. डोली भू–परिष्करण (Ridge Tillage)

विशेष भू–परिष्करण

1. **ग्रीष्मकालीन कर्षण :** रबी की फसलों के कटने के बाद ग्रीष्म ऋतु में खेत मिट्टी पलटने वाले हल से जोत दिए जाते हैं। जुताई के बाद खेत को खुला छोड़ दिया जाता है। दोमट या चिकनी मिट्टी में ग्रीष्मकालीन जुताई लाभदायक होती है, क्योंकि इससे नमी धारण क्षमता बढ़ने के साथ–साथ मिट्टी में वायु का संचार सुचारू रूप से हो जाता है। मिट्टी की निचली सतह पर सूर्य की रोशनी, धूप, वर्षा का पानी तथा वायु का प्रवेश हो जाता है। ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करने से वर्षा जल का संरक्षण भूमि में अधिक होता है तथा भूमि कटाव संबंधी समस्या भी नियंत्रित होती है। हल्की तथा बलुई मिट्टी में ग्रीष्मकालीन जुताई लाभप्रद नहीं होती है। ऐसी जुताई से मृदा

अपरदन के साथ–साथ जल की हानि भी हो सकती है।

2. **गीला भू–परिष्करण :** यह कर्षण जलीय या अर्द्ध जलीय दशाओं में किया जाता है। जहाँ धान के खेतों में मिट्टी चिकनी या दोमट होती है, वहाँ लेव लगाने का काम किया जाता है। ऐसा करने से मिट्टी मुलायम हो जाती है। पोषक तत्वों, विशेषकर नाइट्रोजन का निक्षालन नहीं हो पाता है। नाइट्रोजन अमोनिया के रूप में मृदा कोलाइडों के साथ बंधी रह जाती है। इसके अतिरिक्त फास्फोरस, पोटैशियम तथा लोहा अधिक उपलब्ध स्थिति में आ जाते हैं। घास–पात मिट्टी में गल जाते हैं, परन्तु इस प्रकार की क्रिया सभी प्रकार की मृदाओं विशेषकर बहुत हलकी मृदा में नहीं की जा सकती है।

3. **मिट्टी दबाव (Soil Compaction) :** हल्की एवं बलुई मिटि्टयों में मृदा कण बड़े आकार के होने के कारण जल धारण क्षमता कम होती है। इन मिटि्टयों की मृदा दबाव क्रिया से घनत्व में वृद्धि कर मिट्टी को अधिक घनी बना दिया जाता है। इसके लिए ट्रेक्टर चलित रोलर का उपयोग किया जाता है।

4. **बुआई के लिए खेत की तैयारी या क्यारी बनाना :** खेत को आमतौर पर जुताई करके ढेलों को चूर कर, जमीन को समतल और ठोस बनाकर तथा हैरो चलाकर तैयार किया जाता है। जुताई की गहराई के अनुसार जुताई हल्की (5–6 सेमी.), मध्यम गहरी (15–20 सेमी.) तथा गहरी (25–30 सेमी.) हो सकती है।

   जमीन की जुताई से मिट्टी प्रायः ढेलेदार, ऊँची–नीची तथा ढीली पड़ जाती है। मिट्टी ऐसी अवस्था में नहीं होती कि उस समय बीज बोया जाए। ऐसी स्थिति में हल के अलावा अन्य कर्षण यंत्रों का प्रयोग कर मिट्टी को बुआई योग्य बनाया जाता है। तात्पर्य यह है कि जुताई के बाद अच्छा खेत तैयार करना पड़ता है जो नीचे ठोस हो और ऊपर भुरभुरी बारीक मिट्टी हो। ऐसे खेत में पानी का प्रवेश सुगमतापूर्वक होता है।

भू–परिष्करण के यन्त्र

1. **देशी हल–** देशी हल भारत में प्राचीनकाल से प्रयोग मे लाया जा रहा है। इसका आकार विभिन्न प्रान्तों में बैलों की कद, काठी पर निर्भर करता है। यह जुताई, गुड़ाई, बुआई आदि कार्य कर सकता है। देशी हल से औसतन आठ घन्टे में 0.3 हेक्टेयर खेत जोता जा सकता है। देशी हल से जुताई करते समय दो कूड़ो के बीच में बिना जुता स्थान रह जाता है, क्योकि इसके कूड़ो का आकार V जैसा होता है।

2. **मिट्टी पलटने वाले हल–** ये हल मिट्टी को काट कर नीचे से ऊपर व ऊपर से नीचे कर देते है। इनको ग्रीष्म–ऋतु की जुताई, खेतो में मेड़ बनाना, गन्ने की नाली बनाना इत्यादि कार्यो के लिए प्रयोग में लाया जाता है। आठ घन्टे में इनसे 0.4 हेक्टेयर भूमि को जोता जा सकता है। इनका कूड़ L आकार का होता हैं। मिट्टी पलटने वाले हल कई प्रकार के होते है, जैसे मोल्ड बोर्ड हल, डिस्क हल, मेस्टन हल, पंजाब हल, शाबास हल, विक्ट्री हल आदि।

3. **हैरो –** जुताई के बाद मृदा को बीज बोने योग्य बनाने के लिए उचित योग्यता की आवश्यकता होती है। इसके लिए जुती हुई जमीन को खुर्द–बुर्द करना, ढेलों को तोड़ना पौधों के अवशेषों को मिट्टी में दबाना या हटाना, खरपतवारों को नष्ट करना तथा मृदा को समतल और सघन बनाना। ये सभी कार्य हैरो द्वारा किए जाते हैं। इसको जुताई से पहले, भूमि को समतल करने, खरपतवारों को नियन्त्रित करने व नमी को संरक्षण के काम भी लाया जा सकता है। अलग–अलग क्षेत्रों में मृदा की दशा व जलवायु के आधार पर भिन्न–भिन्न प्रकार के हैरो प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे – डिस्क हैरो, स्पाइकटूथ हैरो, स्प्रिंग हैरो, नाइफ हैरो, ब्लैड हैरो, रेक, ढेला तोड़क, पलवेराइजर व रोलर आदि।

4. **कल्टीवेटर–** बीज बोने के बाद की क्रियाओं को कल्टीवेटर द्वारा किया जाता है। इसमें मृदा को भुरभुरी बनाना, सतह पर बनी पपड़ी को तोड़ना, खरपतवारों को निकालना, पौधों के अधिक होने पर उनकी संख्या कम करना मिट्टी चढ़ाना, खाद एवं उर्वरकों को मिलना तथा जमीन के अन्दर वाली फसलों की बढ़वार के लिए मृदा की उचित भौतिक दशा बनाये रखना आदि।

   कल्टीवेटर कई प्रकार के होते है जैसे – डकफुट टाइन, डिस्क कल्टीवेटर आदि। इनके अलावा अन्य यन्त्र भी भू–परिष्करण में मदद करते हैं जैसे – खुरपी, फावड़ा, कुदाली, पहिये वाला हो, इत्यादि।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में जहाँ वाष्पीकरण की क्षमता वर्षा, ओस, बर्फ से प्राप्त जल की मात्रा से अधिक हो, जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध न हो, में नमी संरक्षण व समुचित सस्य क्रियायें अपना कर फसल उत्पादन करना 'शुष्क खेती' कहलाता है।
2. असिंचित खेती का तात्पर्य बिना सिंचाई के फसलोत्पादन से है, यह प्रायः आर्द्र व अर्द्ध–आर्द्र जलवायु क्षेत्रों में की जाती है। इन क्षेत्रों में वर्षा अधिक व वाष्पीकरण कम होता है।
3. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजना के लिए राजस्थान को 10 कृषि जलवायवीय खंडों में विभक्त किया है।
4. राजस्थान के परिपेक्ष्य में शुष्क कृषि को यहाँ की जलवायु, मृदा व फसल प्रबंध संबंधी परिस्थितियों के कारण अपनाया जाना चाहिए।
5. सस्यावर्तन में उथली जड़ वाली फसलों के बाद गहरी जड़ वाली, फलीदार के बाद अफलीदार, अधिक खाद के बाद कम खाद चाहने वाली, अधिक जलमाँग वाली फसलों के बाद कम जलमाँग वाली, मृदा क्षरण को प्रोत्साहन देने वाली फसलों के बाद मृदा क्षरण को रोकने वाली फसलें बोनी चाहिए।
6. फसल चक्र किसान की घरेलू आवश्यकताओं एवं किसान से पास उपलब्ध साधनों से पूरे–पूरे उपयोग को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए।
7. एक ही ऋतु में एक ही खेत में एक साथ दो या दो से अधिक फसलों को उगाना मिश्रित फसल कहलाती है।
8. मिश्रित फसल हेतु दलहनी + अदलहनी, सीधी बढ़ने वाली + फैलने वाली, गहरी जड़ वाली + उथली जड़ वाली फसलों की बुआई करनी चाहिए।
9. धनात्मक क्रम अन्तःशस्य में मुख्य फसल के प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या एकल फसल के समान ही रहती है।
10. समान कीट व रोगों को आरक्षण देने वाली फसलें एक साथ नहीं बोनी चाहिए।
11. मिश्रित फसलें बोने से अनेक लाभ हैं जैसे – मृदा उर्वरता में वृद्धि, फसल उत्पादन में वृद्धि एवं कीट रोग, खरपतवार नियंत्रण में सहायता, प्रतिकूल मौसम दशाओं में भी उपज मिलना, किसान की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति तथा पशुओं को स्वादिष्ट चारे की प्राप्ति होती हैं।
12. खेती में प्रथम कदम भू–परिष्करण का ही होता है जिसमें मिट्टी की दशाओं को बीज एवं पौध वृद्धि के अनुकूल बनाया जाता है।
13. भू–परिष्करण का मुख्य उद्देश्य मृदा की भौतिक दशा में सुधार लाना व उसकी वपन योग्यता (soil tilth) को बढ़ाना है।
14. बीज बोने से पहले भूमि पर की जाने वाली क्रियाओं को प्रारम्भिक भू–परिष्करण कहते हैं।
15. आधुनिक कृषि यन्त्रों जैसे कि ट्रैक्टर आदि से बार–बार एक ही गहराई पर जुताई करने से मृदा के अधों सतह में कड़ी पपड़ी–सी बन जाती हैं।
16. वह भू–परिष्करण जो किसानों द्वारा कई वर्षों से परम्परा के रूप में फसलोत्पादन के लिए किया जा रहा है। इसे स्वच्छ भू–परिष्करण भी कहते है।
17. संरक्षण भू–परिष्करण वह कर्षण एवं बुआई की पद्धति है जिसमें बुआई के पश्चात् कुल भूमि का 30 प्रतिशत भाग हमेशा पूर्व फसल अवशषों से घिरा रहता है जिससे जल एवं वायु द्वारा मृदा अपरदन कम हो।
18. जुताई की गहराई के अनुसार जुताई हल्की (5–6 सेमी.), मध्यम गहरी (15–20 सेमी.) तथा गहरी (25–30 सेमी) हो सकती है।
19. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करने से वर्षा जल का संरक्षण भूमि में अधिक होता है तथा भूमि कटाव संबंधी समस्या भी नियंत्रित होती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. हमारे देश में कुल शुद्ध कृषि कितना प्रतिशत क्षेत्र वर्षा पर आधारित है।
   (अ) 48 (ब) 58
   (स) 40 (द) 60
2. मृदा में नत्रजन स्थिरीकरण में सहायक फसल है।
   (अ) गेहूँ (ब) उड़द
   (स) मक्का (द) गन्ना
3. भू–परिष्करण का मुख्य उद्देश्य है।
   (अ) मृदा की भौतिक दशा सुधारना
   (ब) मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ाना
   (स) मिट्टी जैव–अवशेषों को बढ़ाना
   (द) खेत में वायु संचार बढ़ाना
4. सामान्यतया / प्राथमिक भू–परिष्करण किया जाता है।
   (अ) बीज बुआई से पहले
   (ब) बीज अंकुरण के बाद
   (स) उपयुक्त नमी होने पर
   (द) कटाई के पश्चात्

5. गन्ने के खेत के चारों ओर सनई की फसल की कुछ पंक्तियाँ बोना कहलाता है–

(अ) मिश्रित फसलें (ब)रक्षक फसल

(स) सहचर फसलें (द) सहायक फसलें

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

6. शुष्क खेती के लिये बाजरा की दो किस्मों के नाम लिखिए।
7. शुष्क कृषि बीज दर सामान्य से कितने प्रतिशत अधिक रखी जाती है
8. कोई दो एक वर्षीय फसल चक्र लिखें।
9. कोई दो मृदा संरक्षण में सहायक फसलों के नाम लिखें।
10. भू–परिष्करण किसे कहते हैं?
11. भू–परिष्करण के प्रकार बताइये।
12. गहरी जुताई भूमि में किस गहराई तक की जाती है?
13. अनाज वाली व दलहनी फसलों के सस्य मिश्रण के दो उदाहरण दीजिए।
14. मृदा संरक्षण में सहायक दो फसलों का नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

15. शुष्क कृषि में नमी संरक्षण के सिद्धान्त लिखिए।
16. फसल चक्र की परिभाषा बताइये।
17. फसल चक्र के कोई तीन लाभ बताइये।
18. मृदा वपन योग्यता किसे कहते हैं?
19. न्यूनतम भू–परिष्करण क्यों आवश्यक है?
20. संरक्षण भू–परिष्करण की परिभाषा लिखिए।
21. प्रतिस्थापन क्रम अन्तःशस्य फसल से क्या अभिप्राय है?
22. मिश्रित सस्य उत्पादन प्रतिकूल जलवायु दशा के विरूद्ध एक प्रकार का बीमा है। इसे उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
23. मिश्रित फसल एवं अन्तःशस्य खेती में अन्तर लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

24. शुष्क कृषि में फसल प्रबन्धन के सिद्धान्तों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
25. फसल चक्र से क्या अभिप्राय है? इसके सिद्धान्तों को विस्तार से समझाइये।
26. भू–परिष्करण के मुख्य प्रकारों का वर्णन करिए।
27. आधुनिक भू–परिष्करण पर प्रकाश डालिए।
28. मिश्रित फसल (Mixed Cropping) से क्या अभिप्राय है? इसके सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला

1. (ब), 2. (ब), 3. (अ), 4. (अ) 5. (ब)